International Journal of Information Movement *Vol. 9 Issue VII* *(November 2024)*
Website: www.ijim.in *ISSN: 2456-0553 (online)* **Pages 63-70**

पूर्व मध्य कालीन भारत में शाकाहारी भोजन

डा. अजय कुमार
सहायक प्राध्यापक
(इतिहास विभाग) , हिन्दु महाविद्यालय, सोनीपत
Email-id : ajay10224@gmail.com

सारांश: प्राचीन काल से भारतीय खानपान में शाकाहारी भोजन को मुख्य स्थान प्राप्त रहा है। इस समय अवधि में विभिन्न प्रकार के खाद्य और पेय पदार्थों का उपयोग भोजन सामग्री के रूप में होता था। कृषि उत्पादों को मिलाकर पकवान तैयार किए जाते थे, जिसमें महिलाओं की भूमिका को उनकी दक्षता के रूप में देखा जाता था। भोजन तैयार करने में अनेक तकनीकों का उपयोग किया जाता था और खास अवसरों पर विशेष प्रकार के पकवान बनाए जाते थे। चावल और गेहूं जैसे पारंपरिक खाद्यान्न ने हमेशा अपने प्रमुख स्थान को बनाए रखा।

प्रमुख शब्द: शाकाहारी भोजन, कृषि उत्पाद, पारंपरिक खाना, पकवान विधियां, महिलाओं का योगदान

1.0 प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही भोजन में शाकाहार का प्रमुख स्थान रहा है। पूर्व मध्यकाल में भी शाकाहार भोजन का प्रमुख अंग था। उपलब्ध स्त्रोतों में तत्कालीन शाकाहारी भोज्य पदार्थों के उल्लेख मिलते हैं। इस काल में अनेक प्रकार के खाद्यों एवं पेयों का प्रयोग खाद्य सामग्री के रूप में किया जाता था। विभिन्न भोज्य वस्तुओं को मिलाकर व्यंजन बनाए जाते थे। स्त्रियों के लिए पाक–कला में पारंगत होना उनकी योग्यता का प्रतीक समझा जाता था। नववधू से आशा की जाती थी कि वह विभिन्न प्रकार के व्यंजनों को बनाने में पूरी तरह निपुण हो।[1] विद्यार्थी जीवन में विद्यार्थियों को पाक–कला का ज्ञान कराया जाता था।[2] भोजन बनाने में विभिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग किया जाता था। दमयन्ती के विवाह समारोह में हुए भोज के वर्णन से पता चलता है कि इस अवसर पर व्यंजनों को इस ढंग से बनाया गया था कि उन व्यंजनों के रूप, स्वाद, गंध को अनुभव कर कोई भी आंमत्रित अतिथि इन व्यजनों में प्रयोग किये गये विभिन्न खाद्य– वस्तुओं को पहचान पाने में पूर्णतः असमर्थ हो गये थे तथा वे यह भी पहचान पाने में असमर्थ थे कि इन पकवानों में से कौन से पकवान में शाक, वनस्पतियों, फलों का प्रयोग किया गया है और किस पकवान में मांस का प्रयोग हुआ है।[3] राजमहलों तथा धनवान व्यक्तियों के घरो में भोजन बनाने में दक्ष रसोइयों की व्यवस्था होती थी।[4] एक सुव्यवस्थित रसोईघर बनाया जाता था।[5] ह्वेनसांग[6] के वर्णन से पता चलता है कि इस काल में भारतीय मुख्यतः मिट्टी के बने हुए बर्तन प्रयोग करते थे तथा कुछ लोग पीतल के बर्तन प्रयोग में लाते थे। बर्तनों में मुख्य रूप से तस्तरियां और कड़ाहियाँ होती थीं। चम्मच अथवा कांटे का प्रयोग नहीं किया जाता था। केवल बीमार होने पर ही तांबे की चम्मच का प्रयोग किया जाता था। शाही परिवार के लोग तथा धनी परिवार में निस्संदेह कीमती पत्थरों तथा कीमती धातुओं के बर्तन ही प्रयोग किए जाते थे। भोजन परोसनें के लिए बर्तनों के अतिरिक्त पत्तों का प्रयोग भी किया जाता था।[7] ताजा पत्तियों को सीलकर बनायी गयी थालियों में भोजन परोसा जाता था। पानी पीने के लिए पत्तों के बनाए गए प्यालों का प्रयोग भी किया जाता था।[8] शाकाहार में अनाजों का प्रमुख स्थान था। चावल का प्रयोग भोजन में प्रमुखता से होता था। अलबेरुनी से पूर्व भारत भ्रमण करने वाले अरब यात्री सुलेमान का भी कथन है कि ''भारतीयों में चावल बहुत अधिक प्रचलित खाद्य है।''[9] दक्षिणी भारत के निवासियों का भी चावल मुख्य भोजन था।[10] तत्कालीन स्रोतों से ज्ञात होता है कि देश के विभिन्न भागों मे चावल की खेती बहुतायत रूप से की जाती थी। इत्सिंग[11] भारत में उच्चकोटी के चावलों की पैदावार के विषय में लिखता है तथा वह यह भी कहता है कि ''दक्षिणी सीमा प्रदेश और पूर्वी सीमा प्रदेश में चावल अधिकता से उपजाया जाता था।'' हर्ष के साम्राज्य में भी चावल प्रमुखता से उगाया जाता था। स्थानेश्वर के श्रीखण्ड क्षेत्र में वैश्य चावल उपजाते थे। कश्मीर में भी चावल उगाया जाता था। लंपक, कोशाम्बी, कन्नौज, कलिंग, बंगाल, मिथिला, मगध भी चावल उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र थे।[12] असम में भी चावल की कृषि की जाती थी।[13] मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, गुजरात तथा मालवा के विभिन्न भागों में भी चावल उपजाया जाता था।[14] चावल की अनेक किस्मों का प्रयोग होता था। अकेले शालि नामक

श्रेष्ठ किस्म के चावल की किस्मों में ही रक्तशालि, महाशालि, कलम, श्रामुख, दीर्धशूक, सुगन्धिका, शाखि, कंचन, महिषशुक, कुसुमांडक, पतंग, और तापनीय आदि किस्मों का उल्लेख किया गया है।[15] शालि[16] चावल को श्रेष्ठ किस्म का चावल माना जाता था। बाण के उल्लेख से पता चलता है कि जब रानी बिलासवती गर्भावस्था में थी तब उसकी दासियां उसके लिए शालि चावल ही लाती थी। शालि चावल की ही एक किस्म महाशालि को कुलीन लोगों के भोजन के लिए ही माना गया था। ह्वेनसांग जब नालंदा मठ में ठहरा हुआ था तो उसे भोजन के लिए प्रत्येक दिन प्रचुर मात्रा में महाशालि नामक श्रेष्ठ किस्म के चावल ही दिये जाते थे।[17] कलिंग नामक चावल भी श्रेष्ठ माना जाता था। इसका नाम इसके उत्पादन क्षेत्र कलिंग के नाम पर ही पड़ा। यह भी राजाओं के भोजन में सम्मिलित करने के योग्य माना गया था।[18] चावल की अन्य किस्मों का भी उल्लेख मिलता है। मानसोल्लास[19] में चावल की आठ और मेघातिथि[20] में पाँच किस्मों का उल्लेख मिलता है। ह्वेनसांग[21] मथुरा के निकट उगाए जाने वाले चावल के विषय में बताता है कि उसे पकने में साठ दिन लगते थे। यह सम्भवतः षष्टिका नामक चावल था। यह भी बहुत पौष्टिक माना जाता था। हर्षचरित[22] में लाल चावल का भी उल्लेख मिलता है । यह चावल भी स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक माना गया था।[23] शालि खंड और शालि चूर्ण[24] का उल्लेख भी मिलता है। कुछ चावलों की किस्में जंगलों में ही पैदा होती थी। इनको मुख्यतः तपस्वी ओर निर्धन लोग ही अपने भोजन में प्रयोग करते थे।[25] भुने हुए चावल जो लाज कहलाते थे भी प्रयोग किये जाते थे।[26] चावलों से बनने वाला अपूप और पिष्तक कश्मीर में प्रमुखता से खाया जाता था।[27] चावल के धोवन में चिंचा, दही, मट्ठा, और चीनी, इलायची का चूर्ण तथा अदरख का रस मिलाकर और हींग का छौंक लगाकर भी एक प्रकार का पकवान बनाया जाता था।[28] चावल के साथ–साथ तत्कालीन भोजन में गेहूँ का भी प्रमुख स्थान था। इत्सिंग[29] कहता है कि पूर्व के लोगों का मुख्य भोजन चावल तथा उत्तर में रहने वालों का मुख्य भोजन गेहूँ है। त्योहारों में गेहूँ का प्रचलन था। उल्लेख मिलता है कि जन्माष्टमी के अवसर पर गेहूँ के बने व्यंजनों का उपयोग किया जाता था।[30] राजपुताना में जैन मूर्तियों को गेहूँ समर्पित किये जाते थे।[31] गेहूँ की खेती अनेक भागों में की जाती थी। पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और सिंध में प्रचुर मात्रा में गेहूँ का उत्पादन होता था।[32] गेहूँ की नंदीमुखी नामक किस्म को स्वास्थ्य के लिए लाभदायक बताया गया है। मधुलिका नामक गेहूँ की किस्म भी विकार रहित मानी गयी थी।[33] गेहूँ को विभिन्न प्रकार से भोजन में सम्मिलित करते थे। गेहूँ के आटे से रोटी बनायी जाती थी।[34] रोटियों को बनाकर बाजार में बेचा भी जाता था। अरब लेखक बुशारी मुकद्दसी मुल्तान में रोटी बेचे जाने का उल्लेख करते हुए लिखता है कि ''एक दरहम में तीस मन रोटी मिलती हैं।[35] गेहूँ के आटे से मिठाईयां भी बनायी जाती थी।[36] अनाजों की गिरी से अनेक पकवान बनते थे।[37] भोजन में चावल, गेहूँ के साथ–साथ जौ का भी प्रमुख स्थान था। जौ की काली बालियों के सौंदर्य का वर्णन किया गया है।[38] जौ की खेती की जाती थी। इत्सिंग[39] उल्लेख करता है कि जौ पश्चिम में उगाया जाता है। कश्मीर में भी यह प्रमुखता से उपजाया जाता था। इसकी फसल पकने पर वहां मेला लगता था।[40] जौ की मुख्यतः दो किस्में थी एक उच्च कोटि की और दूसरी निम्न कोटि की समझी जाती थी।[41] जौ से बनने वाला यवागू प्रचलित खाद्य था।[42] युगांधारी नामक अन्न का उल्लेख भी मिलता है जिसे ज्वार माना गया है। हम्मीर रासो में उल्लिखित पारा भोरा को भी ज्वार मानते हैं।[43] इनके अतिरिक्त इस काल में मक्का भी उपजाया जाता था।[44] शाकाहारी भोजन में चावल, गेहूँ, जौ इत्यादि अनाजों के साथ–साथ दालों का प्रयोग भी किया जाता था। दालों में मुख्यतः काली और पीली मुद्ग, मसूर, वल्ल, माष, राजमाष, अरहर, मोठ और चने का प्रयोग किया जाता था।[45] सोमेश्वर[46] सात प्रकार की फलियों का उल्लेख करते हैं। दालों के उल्लेख तत्कालीन अभिलेखों में भी मिलते हैं।[47] मुद्ग की दाल श्रेष्ठ मानी जाती थी।[48] दालों से विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाए जाते थे। दालों को पकाकर घृत के साथ सेवन करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना गया था।[49] मुद्ग की दाल से वेसवार नामक विशेष व्यंजन बनाया जाता था। माष की दाल से वटक बनाए जाते थे। घारिका नामक पकवान माष की दाल से बने वटकों से बनाया जाता था। इडरिका नामक पकवान भी माष की दाल को उबालकर तथा उसमें कुछ विशेष प्रकार के मसाले मिलाकर और मिश्रण को लड्डुओं का आकार देकर बनाया जाता था। चने की दाल, राजमाष और मसूर की दाल में कुछ मसाले मिलाकर तथा इस मिश्रण को धीमी आंच पर पकाकर विदलपाक नामक व्यंजन बनाते थे। धोसक और वेष्टिका भी दालों से बनता था। इनको बनाने के लिए मुख्यतः माष, मुद्ग अथवा चने की दाल का प्रयोग होता था।[50] दालों को चावल के साथ भी पकाते थे। विशेषकर धार्मिक आयोजनों में इस भोजन का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त दालों से स्वादिष्ट पापड़ बनाए जाते थे। दालों का शोरबा भी बनता

था। दक्षिण मे पुलिंग्गरि बनाने के लिए चने के साथ केले का फल प्रयोग करते थे। मूंग और कुलथी का पेय भी प्रचलित था।[51] अनाज तथा दालों के साथ–साथ शाकाहार में शाक–वनस्पतियों का प्रयोग भी प्रमुखता से होता था। सोमदेव[52] अनेक प्रकार के शाकों की प्रशंसा करते हैं। तत्कालीन स्रोत न केवल विभिन्न प्रकार के शाकों का उल्लेख करते हैं, अपितु उन क्षेत्रों का उल्लेख भी करते हैं जहाँ ये शाक पैदा होते थे। विभिन्न प्रकार की जड़ों और कंदों की खेती की जाती थी।[53] उड़ीसा में तदुंक तथा असम में लौकी, ककड़ी और अन्य अनेक किस्म के शाक प्रचुर मात्रा में उगाए जाते थे।[54] इस समय प्रचलित अनेक प्रकार के शाकों के उल्लेख मिलते हैं। चिकित्सकीय ग्रंथों में पुष्कर पत्र, मकोय, बिल्वपर्णी, परवल, चौलाई अथवा जीवन्ती का शाक, मूली, बथुआ, दूब, सरसों का शाक, कुसुम्भ, कुष्माण्ड, बैंगन, पोलक, करेला, तरोई इत्यादि शाकों का उल्लेख मिलता है।[55] मुस्लिम लेखक भी अनेक प्रकार के शाक जैसे करेला, शलगम, गाजर ,अजवाइन, कद्दू इत्यादि का उल्लेख करते हैं।[56] मानसोल्लास[57] में लौकी, ककड़ी, मूली, बैंगन, प्याज इत्यादि का उल्लेख मिलता है राजतरंगिणी[58] में विस नामक वनस्पति का उल्लेख मिलता है। जो कि मांस के साथ पकाया जाता था। कश्मीर के लोग षड्मूल नामक मूल का प्रयोग शाक के रूप में करते थे। राजशेखर[59] करकदु का उल्लेख करते हैं, यह पकवान शाकों की सहायता से बनाया जाता था, जो मुख्यतः जंगलों में रहने वाले लोगों द्वारा ही प्रयोग किया जाता था।[60] जंगलों में रहने वाले तपस्वी और शैव साधु कमल के तंतु, जड़ इत्यादि का शाक भी खाते थे। अनेक प्रकार के हरे पत्तों का शाक, तरकारियां, खोखले डंठल व कन्द–मूल का प्रयोग प्रमुखता से किया जाता था। सरसों की टहनियां साधारणतः सर्दी के मौसम में खायी जाती थी। कुछ शाक–सब्जियों को औषधियों के रूप में भी प्रयोग करते थे। इनमें चौलाई, जीवन्ती, कच्ची मूली, बथुआ, हरड़, आंवला, द्राक्षा, परवल को लाभदायक माना जाता था। जबकि सरसों का शाक और राई को हानिकारक माना जाता था।[61] प्याज और लहसुन का भी उल्लेख मिलता है। औषधि के रूप में इनका प्रयोग किया जा सकता था। लेकिन पहले कि भाँति अब भी भारतीय समाज में प्याज व लहसुन का प्रयोग करना वर्जित ही माना गया था। प्याज, लहसुन प्रयोग करने वाले को समाज से बहिष्कृत करने का नियम था।[62] इत्सिंग[63] उल्लेख करता है कि ''भारतीय प्याज और रूखे शाक नहीं खाते। हिन्दु यह मानते हैं कि प्याज खाना दुःख का कारण बनता है, इससे नेत्र ज्योति कम होती है और शरीर कमजोर हो जाता है।'' अन्य शाक भी निषेध माने गये थे। लक्ष्मीधर और चण्डेश्वर[64] ने उन भोज्य पदार्थों की लम्बी सूची दी है जिनका प्रयोग अनुचित माना गया था। गुरू अथवा पुरोहित द्वारा दिया गया प्याज ग्रहण किया जा सकता था।[65] शाक–सब्जियों तथा अन्य पकवानों को रूचिकर और स्वादिष्ट एवं पौष्टिक बनाने के लिए तेल तथा मसालों का प्रयोग किया जाता था। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी तेल का प्रयोग हितकारी माना गया था। विशेष रूप से शरद् ऋतु में तेल का प्रयोग करने की सलाह दी गयी थी।[66] खाद्य तेलों में तिल का विशेष स्थान था। अन्य तेलों की अपेक्षा इसका तेल अधिक गुणकारी माना गया था।[67] तिल के साथ–साथ सरसों के तेल का भी खूब प्रयोग किया जाता था। इसके तेल को भी स्वास्थ्यवर्धक माना गया था।[68] इनके अतिरिक्त जरतिल, कंगुनि के बीजों का तेल, कुसुम्भ का तेल, अलसी का तेल, एरण्ड का तेल, बहेड़े के तेल का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[69] तेलों के साथ–साथ मसालों का प्रयोग भी प्रमुखता से किया जाता था। पत्थरों और समुद्र से नमक प्राप्त होते थे।[70] मुख्य रूप से सैन्धव, सौर्वचल, विड, ओद्भिद, काला, रोमन और यवक्षार नामक नमक का प्रयोग किया जाता था।[71] नमक के अतिरिक्त मसालों में मुख्य रूप से त्रिफला, सौंठ, त्रिजातक, पिप्पली, काली मिर्च, अदरक, मिर्च, हींग, हरड़, आंवला, बहेड़ा, धनिया, जीरा, हल्दी, लौंग, इलायची, लाल मिर्च का प्रयोग भोजन में किया जाता था।[72] इन मसालों को भोजन में प्रयोग करने के साथ–साथ इनसे अचार[73] तथा चटनियां[74] भी बनायी जाती थीं। मिष्ठान भी प्रयोग होते थे। मिठाइयां बनाना एक कला मानी जाती थी।[75] मिष्ठानों में गन्ने का प्रमुख स्थान था। इससे अनेक प्रकार के मिष्ठान बनाए जाते थे। गन्ने की खेती की जाती थी।[76] असम में तीन किस्म के गन्ने लाल, काले और सफेद उगाए जाते थे। जो अन्य गन्नों की अपेक्षा अधिक नरम और मीठे होते थे।[77] गन्ने का रस स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना जाता था।[78] अष्टांग संग्रह[79] में उल्लेख है कि गन्ने के अग्रभाग में ईषत् लवण और दांत से चूसने पर शर्करा के समान गुणों वाला होता है। यंत्र की सहायता से निकाला गया गन्ने का रस लाभदायक नहीं माना जाता था। गन्ने के रस से अनेक मिष्ठान जैसे फाणित, शक्कर, राब, खंड, गुड़ इत्यादि बनते थे।[80] बाण[81] शक्कर की दो किस्में लाल शक्कर तथा सफेद शक्कर का उल्लेख करता है। गन्ने से बने मिष्ठानों में से शर्करा को श्रेष्ठ तथा फाणित व राब को हीन गुण युक्त माना जाता था।[82] दानेदार चीनी भी बनायी जाती थी। नैषध चरित[83] में

चीनी को देखकर उसकी तुलना बर्फ के प्रवाह से की गयी है। गन्ने के पश्चात् मिष्ठान का दूसरा प्रमुख स्रोत शहद था। अष्टांग संग्रह[84] में इसके चार प्रकार भ्रामर, पौत्तिक, श्रौद्र और माक्षिक बताए गए हैं। मधु से शर्करा भी बनायी जाती थी।[85] यवास नामक घास से भी शक्कर बनती थी।[86] इन मिष्ठानों से अनेक प्रकार की मिठाइयां बनायी जाती थी।[87] मिष्ठानों के साथ–साथ शाकाहारी भोजन में फलों का भी विशेष महत्त्व था। तपस्वी तो मुख्यतः कन्द–मूलों के अतिरिक्त फलों पर ही अपना जीवन यापन करते थे। मातुलिंग, नारियल, केला, खजूर और संतरा इत्यादि फल गृभस्थ औरत को दिये जाते थे। विशेष अतिथियों जैसे शिक्षक, शिष्य, विद्यार्थियों, परदेशियों और मित्रों को फल और फलों का रस दिया जाता था।[88] तत्कालीन स्त्रोतों से हमें अनेक प्रकार के फलों के उल्लेख मिलते हैं। इस समय मुख्यतः अंगूर, आम, अनार, केला, नाशपाती, नारियल, संतरा, जंबू, रसभरी, कदम्ब फल, कटहल, तरबूज, इमली, बेर, बदरी फल, कुष्माण्ड, अनानास, आडू, अंजीर, खुमानी, खजूर, अखरोट, पिस्ता, बादाम इत्यादि फल और मेवे खाये जाते थे।[89] भोजन में फलों का व्यवहार अत्यधिक होता था। गाँवों में लोग अपने घरों के पास बागानों में फलों के वृक्ष उगाते थे। ह्वेनसांग ने भी उत्तरी भारत के लोगों के घरों के साथ लगते बगीचों को देखा था।[90] सड़कों के किनारे भी फलों के वृक्ष उगाए जाते थे। अनेक प्रकार के फलों के वृक्ष जंगलों में भी उगे होते थे।[91] फलों को विभिन्न प्रकार से लोग अपने दैनिक आहार में सम्मिलित करते थे। फलों से ही चटनी, सिरका, शीरा इत्यादि बनाते थे।[92] फलों का रस भी पीया जाता था। भोजन करने के उपरांत जम्बु फल का रस पीते थे। खजूर का रस तथा नारियल का पानी भी पीया जाता था।[93] फलों को सावधानीपूर्वक ही प्रयोग करने की सलाह दी गयी थी। कहा गया है कि जो फल और शाक पाले, कुहरे, आग, गंदी हवा अथवा ठंडी हवा से दूषित हो गये हों, मांसाहारी पशुओं द्वारा झूठे किये गये हों, कृमियों द्वारा खाये गये हों, पानी के अन्दर उगे हों, बेमौसमी, बासी अथवा सूखे हों, ऐसे फल और शाक प्रयोग नहीं करने चाहिए। जैन अनुयायी उन फलों का प्रयोग नहीं करते थे जिनमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृमि होने की संभावना रहती थी।[94] फलों के साथ–साथ शाकाहारी भोजन में पहले की भाँति दूध तथा दूध से बने खाद्य अपना विशिष्ठ स्थान रखते थे। स्वास्थ्यवर्धक भोजन के रूप में शरद् ऋतु में दूध तथा दूध से बनने वाले खाद्य खाने की सलाह दी गयी थी। रोगमुक्त होने वाले व्यक्तियों, वृद्ध लोगों, बच्चों और सन्यासियों के लिए दूध एक लाभदायक आहार माना गया था।[95] दूग्धाहार स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक माना गया था। इसी कारण यह प्रत्येक स्थान पर उपलब्ध होता था। नालंदा विश्वविद्यालय के छात्रों के भोजन में भी दूध और मक्खन का प्रमुख स्थान था।[96] आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से आठ प्रकार का दूध जैसे गाय, भैंस, बकरी, हथिनी, स्त्री, भेड़, ऊँटनी और घोड़ी का दूध ही प्रयोग करने की सलाह दी गयी थी। गाय का दूध जीवनी शक्ति प्रदान करने वाले सभी द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ रसायन माना गया था।[97] कश्मीर में लोग गाय और भैंस का दूध अधिक प्रयोग करते थे। दक्षिण भारत में ब्राह्मण विशेषकर गाय का दूध ही प्रयोग करते थे।[98] दूध को हल्का गर्म करके ही पीने की आज्ञा थी। अधिक उबाला गया दूध पचने में कठिनाई उत्पन्न करने वाला माना गया था। दूध को मीठा करके पीया जाता था।[99] दूध के अतिरिक्त दूध से बने खाद्य जैसे दही, मट्ठा, मक्खन, घृत, मलाई भी भोजन में प्रमुख रूप से शामिल होते थे।[100] जिस भैंस के बछड़े पूरी तरह से बड़े हो गये हों, उस भैंस के दूध से बनायी गयी दही स्वादिष्ट मानी जाती थी।[101] दूध तथा दूध से बने खाद्यों से अनेक प्रकार के पकवान बनते थे।[102] हर्षचरित[103] में ठण्डे मक्खनिया दूध को एक मृदु पेय के रूप में उल्लेख किया गया है। सात्विक पेयों में दूध के साथ जल का भी विशेष महत्त्व था। पानी को जीवन माना गया था। औषधि के रूप में भी जल का विशेष महत्त्व था। पहले की भाँति पानी प्राप्त करने के प्रमुख स्रोत नदी, तालाब, झरने, कुँए और वर्षा जल ही थे।[104] पीने के पानी को सावधानी से प्रयोग करने की सलाह दी गयी थी। सोमदेव[105] पानी को अमृत तथा विष दोनों की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि अगर पानी को अच्छी प्रकार से विधि अनुसार प्रयोग करतें हैं तो यह अमृत के समान गुणकारी होता है अन्यथा यह विष सदृष्य हानिकारक भी बन सकता है। सोमेश्वर[106] ऋतुओं के अनुसार ही विशेष स्रोतों से प्राप्त किया गया जल ही पीने का निर्देश देते हुए कहते हैं कि पतझड़ के मौसम में वर्षा का पानी, हेमंत ऋतु में नदी का पानी, शिशिर ऋतु में तालाब का पानी और बरसात के मौसम में कुँओं का पानी पीना चाहिए। हंसोदक सभी ऋतुओं में प्रयोग किया जा सकता था। वर्षा ऋतु में अन्तरिक्ष का जल भी श्रेष्ठ माना गया था। आयुर्वैदिक दृष्टिकोण से नदियों के पानी के विषय में कहा गया कि जो नदियां पश्चिमी समुद्र में गिरती हैं, तेज बहती हैं और जिनका पानी निर्मल है ऐसी नदियों का जल पथ्य होता है। इन गुणों के विपरीत गुणों वाली नदियों के जल को अपथ्य माना गया। यह भी कहा गया कि हिमाचल और मलयाचल से

उत्पन्न होने वाली नदियों का पानी पत्थरों से टकराने के कारण विक्षोभित होकर टुकड़े–टुकड़े हो जाता है, ऐसे पानी वाली नदियों का जल पथ्य होता है और इन्हीं नदियों का पानी जब स्थिर बन जाए तब कृमि, श्लीपद, हृदयरोग, कण्ठरोग और शिरोरोगों को उत्पन्न करता है। केवल पारदर्शी, स्वादहीन, गंधहीन और चमक वाला पानी ही पीने योग्य माना जाता था। बासी पानी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना गया था। पानी को भली–भाँति संरक्षित किया जाता था तथा इसकी शुद्धता का विशेष ध्यान रखा जाता था।[107] पानी को उबालकर अथवा कुछ मसाले मिलाकर शुद्ध करते थे तथा लकड़ी की आग से पानी को शुद्ध करके तथा हवा से इसको ठंडा किया जाता था। यह पानी स्वादिष्ट माना गया था।[108] पाटल, उत्पल और कंपक इत्यादि पुष्पों से पीने के पानी को सुगन्धित करते थे।[109] इस प्रकार से तैयार किया हुआ पानी दान भी किया जाता था। यशोवर्मनदेव के नालंदा शिलालेख[110] में वर्णित है कि यशोवर्मनदेव के मंत्री का पुत्र मालाद पवित्र और सुगन्धित पानी दान करता था। सार्वजनिक स्थानों पर पीने के पानी की व्यवस्था होती थी। इस प्रकार की व्यवस्था निस्संदेह शासन द्वारा नियुक्त एक विशेष अधिकारी ही करता था ।[111] विवेचन से स्पष्ट है कि पूर्वमध्यकालीन भारत में शाकाहार का विशेष महत्त्व था। अनेक खाद्य अनाजों, फल, शाक–सब्जियों, पेयों, मिष्ठानों का प्रयोग शाकाहारी भोजन के रूप में होता था। अनेक पकवानों को बनाया जाता था, इन्हें बनाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया का वर्णन मिलता है। इस समय के आयुर्वेदाचार्यों ने विभिन्न खाद्यों के औषधीय गुणों की पर्याप्त विवेचना की है निस्संदेह इस काल में समाज भोज्य पदार्थों के शरीर पर पड़ने वाले प्रभावों से परिचित था इसी कारण शाकाहारी भोज्य पदार्थों को भी सात्विकता के आधार पर प्रयोग करने के प्रति सचेत रहने को कहा गया था अतः अनेक खाद्य अनेक लोगों के लिए वर्जित माने गये थे। इस काल के साहित्य में शाकाहार सम्बन्धी वर्णनों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन मनीषियों ने इस सम्बन्ध में गहन अनुसंधान किया और उन्हीं खाद्यों का प्रयोग करने की सलाह दी जो न केवल स्वास्थ्यवर्धक ही हो अपितू मन, मस्तिष्क में सकारात्मक उर्जा भी लेकर आए।

2.0 संदर्भ

1. दशकुमार चरित, अनुवाद, ए0 डब्लू0 रयदर, पृ0 138,
2. युक्तिव्यक्तिप्रकरण, पृ0 21–49,
3. नैषध चरित, 16, 81, 83,
4. हर्ष चरित, पृ0 138,
5. अष्टांग संग्रह, 8/60–61; हर्ष चरित, पृ0 208; मानसोल्लास, 3, अध्याय 13; नैषध चरित, 16; भविष्यतकहा, 4/16,
6. ह्वेनसांग, वाटर्स, भाग 1, पृ0 178,
7. दशकुमार चरित, पृ0 172; तकाकुसु का अनुवाद, पृ0 46–47; कादम्बरी, पृ0 99,
8. अष्टांग संग्रह, 7/66; विष्णु धर्मोत्तर पुराण, 2/63, 113,
9. ई0 रेनुडोट, एंशिएन्ट अकाउण्ट ऑफ इण्डिया एण्ड चाइना, पृ0 84,
10. के0 ए0 नीलकण्ठ शास्त्री, ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इण्डिया, पृ0 191,
11. तकाकुसु का अनुवाद , पृ0 43–45,
12. एस0 बेल, बुद्धिष्ट रिकार्ड आफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड, भाग 1, पृ0 87–88; हर्षचरित, पृ0 79; राजतरंगिणी, 5/71,
13. के0 एल0 बरूआ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ कामरूप, भाग 1, पृ0 187,
14. एस0 एस0 नादवी, अरब और भारत के सम्बन्ध, पृ0 64; एपिग्राफिआ इण्डिका, 21, पृ0 42,
15. अष्टांग संग्रह, 8/3–12; अभिधानरत्नमाला, 2/425,
16. कादम्बरी, पृ0 137; नीतिशतक, 75,
17. ह्वेनसांग, वाटर्स, भाग 2, पृ0 86; एस0 बेल, द लाइफ आफ ह्वेनसांग, पृ0 109,
18. मानसोल्लास, 3/1347,
19. वही, 3/1346–48, 1358,
20. मेघातिथि, 8/320,
21. ह्वेनसांग, वाटर्स, भाग 1, पृ0 300,
22. हर्ष चरित, पृ0 95,
23. अष्टांग संग्रह, 8/7,

24. कुट्टनीमतम्, 831; राजतरंगिणी, 8/140,
25. मेघातिथि, 11/144; उत्तर रामचरित, 4/1; अष्टांग हृदय,6/11–12; नीतिशतक, 97–98,
26. यशस्तिलेक, पृ0 401, 481; नैषध चरित, 16/68; मानसोल्लास, 3/1373–74,
27. नीलमत पुराण, 499–505,
28. मानसोल्लास, 3/1578–79,
29. तकाकुसु का अनुवाद, पृ0 43, 45,
30. कष्त्यकल्पतरू, पृ0 395; कष्त्यरत्नाकर, पृ0 257,
31. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 1, पृ0 57,
32. हर्ष चरित, पृ0 79; नियतकालखंड, 396–97; एस0 एस0 नादवी, पूर्वोक्त, पृ0 65,
33. अष्टांग संग्रह, 7/14–16, 22,
34. उत्तर रामचरित, 4/36; मानसोल्लास, 3/1375–81; नैषध चरित, 16/107,
35. एस0 एस0 नादवी, पूर्वोक्त, पृ0 65,
36. कथाकोषप्रकरण, षालिभद्र कथा, पृ0 58; मानसोल्लास, 3/1384–86; यषस्तिलेक, पृ0 512; नीलमत पुराण, 437,
37. हर्ष चरित, पृ0 139,
38. अष्टांग संग्रह, 7/19; अभिधानरत्नमाला, 2/430; मेघातिथि, 8/320,
39. तकाकुसु का अनुवाद, पृ0 43–44,
40. नीलमत पुराण, 696–697,
41. अष्टांग संग्रह, 7/21, 7/52,
42. प्रबंधचिंतामणि, 3/117,
43. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 11, पृ0 46; जर्नल ऑफ दी एशियाटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, भाग 48, पृ0 226,
44. जर्नल ऑफ दी एशियाटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, भाग 66, पृ0 113,
45. हर्षचरित, पृ0 79, 209; मानसोल्लास, 3/1359–67,
46. मानसोल्लास, 3/1346–48, 1358,
47. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 11, पृ0 56,
48. अष्टांग संग्रह, 7/26; अष्टांग हृदय, 8
49. अष्टांग संग्रह , 6/33–34, 12,
50. वही, 7; मानसोल्लास, 3/1359–63, 1388–1401; नैषध चरित, 16/98,
51. नीलमत पुराण, 484–491, 526–29; अष्टांग संग्रह, 7/48, 54, 8/45–49; मानसोल्लास, 3/1367–72,
52. यषस्तिलेक, 3/356,
53. ह्वेनसांग, वाटर्स, भाग 1, पृ0 178,
54. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, भाग 28, पृ0 193,
55. अष्टांग संग्रह, 7/115–118, 135; अष्टांग हृदय, 6/80–84,
56. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, भाग 28, न0 2; आर0 सी0 मजूमदार, द स्ट्रगल फॉर एम्पायर, नीतिशतक, पृ0 402,
57. मानसोल्लास, 3/1555–64,
58. राजतरंगिणी, 8/143, 676,
59 काव्यमीमांसा, 17/94,
60. उत्तर रामचरित, 4/1, पृ0 85,
61. ह्वेनसांग, वाटर्स, 2/117; एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 21, न0 23, 1/15; हर्षचरित, पृ0 228–229,
62. अष्टांग संग्रह, 7/162–165; राजतरंगिणी, पृ0 342; कष्त्यकल्पतरू, नियतकालखंड, पृ0 275–84,
63. तकाकुसु का अनुवाद, पृ0 137,
64. कष्त्यकल्पतरू, पृ0 275–84; गष्हस्थरत्नाकर, पृ0 352, 667,
65. उत्तर रामचरित, 3/19; राजतरंगिणी, 8/145,
66. अष्टांग हृदय, 3/13,
67. ह्वेनसांग, वाटर्स, पृ0 282; पद्म पुराण, 22, 71; अष्टांग संग्रह, 6/111,
68. तकाकुसु का अनुवाद, पृ0 44; अष्टांग संग्रह, 9,
69. अभिधानरत्नमाला, 2/426–428; प्रबंधचिंतामणि, 2/64; अष्टांग संग्रह, 6/111; अष्टांग हृदय, 5/61,

57,
70. एस0 बेल, पूर्वोक्त, भाग 2, पृ0 259, 272,
71. अष्टांग संग्रह, 12/31–36; अष्टांग हृदय, 6/114–15; मानसोल्लास, 2/1588,
72. अष्टांग संग्रह, 12/39–67; अष्टांग हृदय, 6/161–164; हर्षचरित, पृ0 79; मानसोल्लास, 2/1442–46,
73. मानसोल्लास, 2/1578–79, 2/1442–46,
74. नैषध चरित, 16/86,
75. षुक्रनीतिसार, 4/3/143,
76. नैषध चरित, 21/153, 8/2/101; एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग, 14, 16, 20, 25,
77. काव्यमीमांसा, 12; पटना युनिवर्सिटी जर्नल, भाग 2,
78. अष्टांग संग्रह, 4/15–18,
79. वही, 6/81–82,
80. अष्टांग संग्रह, 6/86; अष्टांग हृदय, 5/47; हर्षचरित, पृ0 208; गरुड़ पुराण, 10/96,
81. हर्षचरित, पृ0 156,
82. अष्टांग संग्रह, 6/90,
83. नैषध चरित, 16/93,
84. अष्टांग संग्रह, 6/98, 85,।
85. वही, 4/24–26, 6/88–90; अष्टांग हृदय, 3/18–20, 5/49,
86, अष्टांग हृदय, 5/50,
87. वही, 39; मानसोल्लास, 3/1386–88, 1415–17; अष्टांग संग्रह, 6/88; कथाकोषप्रकरण, पृ0 58,
88. तकाकुसु का अनुवाद, पृ0 125; एस0 बेल, द लाइफ ऑफ ह्वेनसांग, पृ0 109,
89. अष्टांग संग्रह, 7/134, 135; अष्टांग हृदय, 6/117; ह्वेनसांग, वाटर्स, भाग 2, पृ0 277,
90. हर्षचरित, पृ0 79; ह्वेनसांग, वाटर्स, भाग 1, पृ0 301,
91. उत्तर रामचरित, 3/12; राजतरंगिणी, 7/498; काव्यमीमांसा, 17/94; अष्टांग संग्रह, 7/168,
92. इब्बनबतूता, पृ0 18; ह्वेनसांग, वाटर्स, भाग 1, पृ0 184–185, भाग 2, पृ0 285, 282,
93. तकाकुसु का अनुवाद, पृ0 125; एच0 सी0 चकलधर, षोसल लाइफ इन एंषिएन्ट इण्डिया, पृ0 160,
94. अष्टांग हृदय, 6/140–43; यशस्तिलेक, पृ0 327, 330,
95. ह्वेनसांग, वाटर्स, भाग 1, पृ0 178; अष्टांग संग्रह, 4/15–18; अष्टांग हृदय, 8/50,
96. ह्वेनसांग, पूर्वोक्त, पृ0 178; एस0 बेल, सी0 यु0 की0, भाग 1, पृ0 88,
97. अष्टांग संग्रह, 6/52, 54; अष्टांग हृदय, 5/22,
98. नीलमत पुराण, 408–440; के0 ए0 एन0 षास्त्री, पूर्वोक्त, पृ0 190,
99. अष्टांग संग्रह, 6/62; अष्टांग हृदय, 6/29; अग्नि पुराण, 163/10,
100. ह्वेनसांग, पूर्वोक्त, पृ0 178; अष्टांग संग्रह, 6/65–74; अष्टांग हृदय, 5/35,
101. नैषध चरित, 16/93,
102. अष्टांग संग्रह, 6/78–79; मानसोल्लास, 3/1573–84; हर्ष चरित, पृ0 79–80; दशकुमार चरित, पूर्वोक्त, पृ0 172,
103. हर्षचरित, पृ0 139,
104. अष्टांग संग्रह, 6/12, 30; मानसोल्लास, 3/1605,
105. यशस्तिलेक, 2/368,
106. मानसोल्लास, 3/1627,
107. अष्टांग संग्रह, 6/52; अष्टांग हृदय, 5/8–10; यशस्तिलेक, 3/370–371; तकाकुसु का अनुवाद, पृ0 31,
108. यशस्तिलेक, 3/370–371; मानसोल्लास, 3/1619–20; नैषध चरित, 16/89,
109. मानसोल्लास, 3/1622–24;
110. एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग 20, पृ0 37–46,
111. कादम्बरी, अनुवाद; हर्ष चरित, पृ0 139,

सहायक ग्रंथ

शर्मा, रामशरणः पूर्वमध्यकालीन भारत का सामन्ती समाज और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1996

सहाय, शिवस्वरूपः भारतीय संस्कृति, चोखम्बा सीरीज, वाराणसी, 1987
नादवी, एस.एस. : अरब और भारत के सम्बन्ध, हिन्दी ऐकेडमी, इलाहाबाद, 1930
मिश्र, जयशंकर : ग्यारहवीं सदी का भारत, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1985
अच्छेलाल : प्राचीन भारत में कृषि, सिद्धार्थ प्रकाशन, वाराणसी, 1980
कपूर, यदुनन्दन : हर्ष, कालिज बुक स्टोर्स, अलिगढ़, 1955
प्रसाद, महेश : सुलेमान सौदागर का यात्रा विवरण, काशी, 1978
मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1986
Gopal, L. : Economic life of Northern India, Motilal Banarasidas, Delhi,1965
Majumdar, B.P.: Socio-Economic History of Northern India (1030-1494 AD), Calcutta, 1960
Yadav, B.N.S. : Society and Culture in Northern India in the twelfth Century, Allahabad, 1973
Randhawa, M.S.: A History of Agriculture in India, New Delhi, 1980
Ray, J.C. Acharya: Ancient Indian Life, Calcutta,1948
Aiyangar, A. : Pre Muslims India, D.K. Publication, Delhi, 1996